अध्याय - 5

सिद्ध-नाथ काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

हिन्दी काव्य की विकास-परम्परा में भाषिक संरचना एवं विषयगत लगाव के विचार से आदिकालीन काव्य के दो भेद किए जा चुके हैं – अपभ्रंश एवं डिंगल के माध्यम से व्यंजित साधनात्मक एवं सामन्तीय काव्य के नाम से इन्हें पिछले अध्यायों में रेखांकित किया जा चुका है । सोचा यह गया था कि अपभ्रंश भाषा के समस्त साधनात्मक काव्य में विकीर्ण प्रशस्ति के विभिन्न सूत्रों का संग्रथन एक ही अध्याय में एक साथ कर लिया जायेगा । किन्तु विषय के विस्तार एवं शैलीगत अपनी पृथक् पद्धति के कारण शोध-प्रबन्ध के सुगठन के लिए यह आवश्यक हो गया कि जैन काव्य की प्रशस्ति का अनुशीलन अपभ्रंश के शेष साधनात्मक काव्य से भिन्न ही एक अध्याय में किया जाए । यही वह कारण बना जिससे अपभ्रंश के साधनात्मक काव्य में प्रबन्धात्मक प्रवृत्तियों को लेकर लिखे गए जैन कवियों के चरित, रासो, पुराण आदि की बहुलता वाले काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् पांचवें अध्याय में मात्र सिद्धों एवं नाथों की वाणियों में पाई जाने वाली प्रशस्ति का मूल्यांकन करने का औचित्य मान लिया गया । सिद्धों और नाथों की रचनाएं मात्र मुक्तक हैं, अतः इनकी वस्तु रचना में वह स्वरूप निरूपित नहीं है जो जैन कवियों की प्रबन्ध रचनाओं में है । प्रबन्ध एवं मुक्तक के अन्तर के अनन्तर ही इनमें एकता है, समानता है ।

यही कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिनकी प्रेरणा से शोध-प्रबन्ध को चारुता एवं कसाव देने की गरज से जैन काव्य से भिन्न अध्याय में सिद्ध एवं नाथ काव्य की प्रशस्ति का निरूपण इस प्रसंग में किया जा रहा है ।

सिद्ध - नाथ काव्य : एक पुनर्परिचय :-

प्राचीन आचार्यों ने साहित्य को सनातन मूल्यों की उपलब्धि का साधन माना है ।, यही कारण है कि भारत की मनीषा ने 'आत्म तथा अनात्म भावनाओं की भव्य अभिव्यक्ति को ही साहित्य की संज्ञा प्रदान की है ।' सौन्दर्य-पिपासा मानव की चिरन्तन प्रवृत्ति है । इस अनुभूति के लिए व्यक्ति, धर्म, जाति, समाज और देश

का बन्धन किसी भी प्रकार अपेक्षित नहीं है । निर्बाध चिन्तन शील मस्तिष्क की मान्यताओं में आत्मदर्शन को ही साहित्य के नाम से सार्थक स्वीकारा गया है । अपने भीतर जो आभ्यन्तिक शक्ति है, उसी का दर्शन साहित्य की साधना के द्वारा सम्पन्न होता है । इस देखने - दिखाने के कार्य को साहित्य ही सम्पादित करता है । साहित्यकार की यही चरम साधना है ।[1] सिद्धों एवं नाथों की साधना में मुख्य रूप से इसीलिए घट के भीतर ब्रह्माण्ड की साधना - 'जोइ पिण्डे सोइ ब्रह्मण्डे' का उद्घोष पाया जाता है । इसी मूल भाव से साधना करने वाले सन्तों को सिद्ध कहा गया । इन्हीं सिद्धों में एक सिद्ध थे - गोरखनाथ । इन्होंने नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया ।

विद्वानों का विचार है कि सिद्ध - साहित्य में साहित्यिकता का अभाव है किन्तु विषय एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से यह साहित्य परवर्ती हिन्दी साहित्य का प्रेरणा - स्रोत रहा है । विशेषतः सन्त साहित्य को इससे दूर तक प्रभावित होना पड़ा है । सिद्ध - साहित्य की खण्डन - मण्डन की प्रवृत्ति, योगाचार, सांसारिक निस्सारता, मायावाद दोहा-चौपाई शैली आदि विशेषताएं भक्तिकालीन साहित्य की भूमि का कार्य करती हैं ।[2] ये सभी सिद्ध मौलिक रूप से बौद्ध धर्म से प्रसूत थे । दरअसल बात यह है कि बौद्ध धर्म की महायान शाखा की परिणति वज्रयान, काल चक्रयान, सहजयान, तन्त्रयान आदि के रूप में हुई । बौद्ध सिद्धान्ताचार्यों ने वज्रयान आदि यानों के सिद्धान्त की व्याख्या के लिए अपभ्रंश भाषा को माध्यम बनाया । महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री, डा० शहीदुल्ला तथा डा० सुकुमार सेन आदि ने इन सिद्धों के साहित्य का गहन अनुशीलन किया और उनके विषय को प्रकाश में लाने का प्रयास किया । इन सिद्धों की रचनाओं में दो प्रकार की भाव-धारा मिलती है । एक तो सम्प्रदाय से सम्बन्धित सिद्धान्त के विवेचन की, दूसरे उपदेश एवं खण्डन-मण्डन की । सिद्ध काव्य में यही दो प्रमुख स्वर पाये जाते हैं ।[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यतानुसार भी यही बात प्रमाणित हो गयी है कि विराट बौद्ध सम्प्रदाय हीनयान तथा महायान दो शिविरों में विभक्त है । महायान सम्प्रदाय में जिन बातों पर जोर दिया जाता था

1- हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : भाग 1 : पृष्ठ 19 - 20
2- आदिकाल की भूमिका : पृष्ठ - 101
3- डा० रामसिंह तोमर : प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : पृष्ठ - 172

उनमें सर्वभूत हित में विश्वास रखना तथा संसार के समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ प्रयत्न करना, स्वयं संकट सहकर भी, नरक भोग कर भी जीवों के उद्धार का प्रयत्न करना प्रमुख था । बोधिसत्व में विश्वास रखते हुए यह मानना कि मनुष्य अपने सत्कर्मों और भक्ति के द्वारा बोधिसत्व प्राप्त कर सकता है – 'हरि को भजे सो हरि का होई' भी इनको प्रमुख मान्यता थी । इस सम्प्रदाय में बुद्ध के लोक परत्व में विश्वास था । यह भी विश्वास था कि बुद्धगण काल और देश की सीमा में परिव्याप्त हैं । ये लोग जगत को सार - शून्य और नश्वर मानते थे । इनमें कर्म काण्ड की अधिकता थी और तन्त्र-मन्त्र में अधिक विश्वास था । ये लोग पालि में नहीं, संस्कृत ग्रन्थों में अधिक आस्था रखते थे । बुद्ध में और विशेष करके अमिताभ बुद्ध में विश्वास करने वाला यह सम्प्रदाय यह मानता था कि बुद्ध के नाम जप से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है ।[1]

सिद्धों की व्याख्या करते हुए यह भी बताया गया है कि 'साधना में निष्णात, अलौकिक सिद्धियों से चमत्कार पूर्ण अति प्राकृतिक शक्तियों से युक्त व्यक्ति सिद्ध कहलाते थे ।'[2] इनकी साधना की मूल पीठिका मन्त्रों के आश्रित थी । मन्त्रों से ये सिद्धियों का प्रचार करते थे और इन्हीं सिद्धियों के कारण ये सिद्ध कहलाए । 'मन्त्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की युक्ति प्रचारित करने वाले साधक सिद्ध नाम से प्रसिद्ध हुए ।'[3] मन्त्र पूत साधना वाले ये सिद्ध सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रति भी लगाव रखते थे । ये प्रधानतः साम्प्रदायिक उद्देश्यों के कवि थे । परन्तु इनमें से अधिकांश न तो विशुद्ध दार्शनिक कहे जा सकते थे, न वे धर्मोपदेशकों की श्रेणी में ही लाए जा सकते थे । इन सिद्धों ने ऐसा करते समय अपने समकालीन समाज की एक झाँकी मात्र दी है और वह भी कभी-कभी भली-भाँति विवृत्त नहीं हो पाई है । इन्हीं गीतों में हुए चित्रण के अन्तर्गत हमें समकालीन समाज के चित्रण, उसके कुछ रूढ़ियों की मनोवृत्ति, रहनसहन, प्रथाओं तथा मनोरंजन-सम्बन्धी साधनों के भी वर्णन मिलते हैं ।[4]

1- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका : पृष्ठ 8-9
2- हिन्दी साहित्य कोश : पृष्ठ 927
3- डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ-52
4- आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी : बौद्ध सिद्धों के चर्यागीत : पृष्ठ-85

धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो सिद्धों का काव्य और उनकी धर्म-साधना ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध विद्रोह के रूप में खड़ी थी । यह मान लेने में तनिक भी संकोच नहीं कि सचमुच सिद्धों का सामाजिक पक्ष परलोकवाद की परिकल्पना से अपने आप दुर्बल हो गया था । यह कहना सर्वोचित होगा कि परलोक वाद का वह रास्ता व्यक्तिवादी था । अतः उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि सामाजिकता को अपने अन्दर अन्तर्भुक्त कर लेता, उनका सामाजिक पक्ष बाहर ही छूट कर रह गया । सिद्धों के काव्य में स्त्रियों को एक विशेष बाधामय दृष्टि से देखा गया है । इनकी धार्मिक कविता के मूल में व्यक्तिवादी सचितना, संसारोपेक्षा का भाव, काया योग तथा खण्डन-मण्डन का स्वर मुख्यतया अनुगुंजित है । सिद्ध साहित्य में गीतों की प्रमुखता भी पाई जाती है । सिद्धों की कविता योगिसम्प्रदाय की पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत की गयी है । सिद्धों की काव्य-धारा में रूपक और उलटवासियों का खूब प्रयोग पाया जाता है तथा सरलता और सहजोन्मुखता का वह प्रकाशन भी इनकी वाणियों में हुआ है जिससे वातावरण में विस्मय के भाव का प्रसार होने के लिए पंथ प्रशस्त होता रहा । सिद्ध काव्य में पुरातनता एवं परम्परा के प्रति आमोह है किन्तु स्वभावात्मकता की डगर पर चलनेवाली इस कविता में रचनात्मक दुरूहता भी पाई जाती है ।[1]

सिद्धों की संख्या चौरासी बताई जाती है और नाथों की नौ । अब भी लोग नौ नाथ और चौरासी सिद्धों की चर्चा करते हैं – 'नवौनाथ चलि आवैं और चौरासी सिद्ध ।'[2] कबीर ने भी लिखा है – सिध चउरासी भाइया खेला ।

नवैनाथ सूरज और चन्दा । सिद्धों की नामावली में जिनका उल्लेख किया जाता है उनकी संख्या चौरासी है । इनमें लूइपा, लीलापा, विरूपा, डोम्भिपा, शबरपा, सरहपा, कंकालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, वीणापा, शान्तिपा, तन्तिपा, चमारिपा, खड्गपा, नागार्जुन, कण्हपा, कर्णरिपा, थगनपा, नारोपा, शलिपा, तिलोपा, छत्रपा, भद्रपा, दोखंधिपा, अजोगिपा, कालपा, धोम्भिपा, कंकणपा, कमरिपा, डेंगिपा, भदेपा, तन्धेपा, कुकुरिपा, कुचिपा, धर्मपा, महीपा, अचिंतिपा,

---

1- रांगेय राघव : गोरखनाथ और उनका युग : पृष्ठ 160 - 163.
2- जायसी : पद्मावत : रत्नसेन सूली-खण्ड दोहा सं० २७२ ।

मलहपा, नलिनपा, भुसुकिपा, इन्द्रभूति, मेकोपा, कुठालिपा, कमरिपा, जालन्धरपा, राहुलपा, धर्वरिपा, धोकरिपा, मेदनीपा, पंकजपा, घंटापा, जोगीपा, चेलुकपा, गुंडरिपा, लुचिकपा, निर्गुणपा, जयानन्त, चर्पटीपा, चम्पकपा, भिखनपा, भलिपा, कुमरिपा, चवरिपा, मणिभद्रा, मेखलापा, कनखलापा, कलकलपा, कंतालीपा, धहुलिपा, उधलिपा, कपालपा, किलपा, सागरपा, सर्वभक्षपा, नागबोधिपा, दारिकपा, पुतुलिपा, पनहपा, कोकालिपा, अनंगपा, लक्ष्मीकरा, समुदपा एवं भलिपा । इन नामों का उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार किया गया है ।[1] इनमें मात्र 14 साहित्यकार थे जिनका उल्लेख इस शोधप्रबन्ध के तीसरे अध्याय में किया जा चुका है ।

सिद्धों की इस लम्बी सूची से स्पष्ट हो जाता है कि साधना के स्तर पर इन सिद्धों ने वर्ण, वर्ग, लिंग और जाति में अभेद स्थापित करते हुए साधना का सहज पंथ प्रशस्त किया था । इसमें राजकुमार थे तो राजकुमारियाँ भी थीं, गृहपति थे, गृहदासियाँ भी थीं । ब्राह्मण थे, शूद्र थे, शूद्राएँ थी । चर्मकार थे, चिड़ीमार भी थे, डोम थे, लकड़हारा थे, तन्तुवाय थे और कायस्थ भी थे । तात्पर्य यह कि सिद्धों का यह समुदाय सभी वर्ण, वर्ग, जाति एवं लिंग का एक प्रतिनिधि मण्डल था । इन चौरासी सिद्धों में मात्र तेरह - चौदह ही ऐसे थे जिन्होंने काव्य रचना की है । इन सिद्ध - साहित्यकारों ने चर्यापद, चर्यागीत, दोहाकोश, गान, गीतिपद सब कुछ लिखा है । डा० वर्मा ने सिद्ध साहित्य का विवरण देते हुए जो तथ्य प्रतिपादित किया है वह विचारणीय है ।

यह सिद्ध साहित्य चार विद्वानों द्वारा विवेचित किया गया है । हरप्रसाद शास्त्री ने प्रथमतः सरहपा और कृष्णाचार्यपा के दोहों को "बौद्ध गान ओ दोहा" नाम से प्रकाशित किया किन्तु इनके अशुद्ध पाठ का संशोधन करते हुए डा० शहीदुल्ला ने तिब्बती पाठ के सहारे एक नया संकलन तैयार किया । राजगुरु हेमराज शर्मा के संग्रह के आधार पर डा० प्रबोधचन्द्र बागची ने तिलोपादस्य दोहा कोष, सरहपादस्य दोहा, सरहपादस्य दोहा कोष, कण्हपादस्य दोहा कोष, सरहपादीय दोहा संग्रह, दकार्णव दोहा संग्रह (दोहा कोष) नाम से सिद्धों की रचनाओं की अपनी

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ - 72 - 73

टिप्पणी सहित प्रकाशित किया ।[1] किन्तु राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी काव्य-धारा नाम से जो संकलन प्रकाशित किया है उसे हिन्दी विद्वान अधिक संगत और प्रामाणिक मानते है । हिन्दी कविता के इस प्रारम्भिक साहित्य की उपलब्धि नालन्दा और विक्रमशिला के विद्यापीठों की देन है जो वज्रयान तत्व के प्रचार में रची गयी थी । इस अध्याय में इन्हीं ग्रन्थों में संकलित सिद्धों की इन्हीं रचनाओं के आधार पर सिद्ध काव्य की प्रशस्ति के स्वरूप का निरूपण किया जाएगा ।

सिद्धों का परिचय :-

सिद्धों का काल 8वीं शती है । सिद्ध-परम्परा बौद्ध धर्म की विकृति का परिणाम है । 483 ई०पू० में बुद्ध - निर्वाण के 45 वर्ष बाद तक बौद्ध - धर्म का सैद्धान्तिक प्रचार होता रहा । बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्म काण्ड एवं हिंसा के विरोध में हुआ था । सहानुभूति एवं सहज सदाचार पर ही सिद्ध - साधना निर्भर करती है । प्रथम ईसवी में बौद्ध - धर्म हीनयान तथा महायान नामक दो शाखाओं में विभाजित हो गया । बाद में महायान मन्त्रयान में बदल गया और मन्त्रयान से दो उपसम्प्रदाय बने वज्रयान और सहजयान । मन्त्रों द्वारा साधना करने वाले सिद्ध कहलाए ।[2] बौद्ध - सिद्ध दो प्रकार के थे - सहजयानी सिद्ध और वज्रयानी सिद्ध । तीसरे नाथ पंथी भी सिद्ध थे । यही सिद्ध आगे चलकर नाथ पंथी बन गए थे । इन नाथ पंथी सिद्धों के प्रवर्त्तक गोरखपा या गोरखनाथ पहले बौद्ध सिद्ध थे, बाद में वे शैव होकर नाथ पंथी कहलाए । इस प्रकार हिन्दी के साधना प्रधान साहित्य की संरचना में इन सिद्धों का बड़ा योग रहा है । सिद्ध साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए डा० खण्डेलवाल ने मुख्य छः तथ्यों पर विशेष बल दिया है । उनके अनुसार इस साहित्य में आन्तःसाधना पर जोर देकर शास्त्रीय मार्ग का खण्डन करते हुए पण्डितों को फटकारा गया है और स्वच्छन्द मार्ग का समर्थन किया गया है । इन सिद्धों के साहित्य में वाममार्गीय प्रवृत्तियों को अपनाने का उपदेश दिया गया है । सिद्ध काव्य वाह्यों से प्रेरित अन्तर्मुखी साधना के महत्व को भी निश्चित करता है । इस साहित्य

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ - 76
2- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : पृष्ठ 23 - 24

की वाणी पारिभाषिक प्रतीकों से मुक्त होकर सहज ही बोधगम्य है । तन्त्र साधना का निरूपण करते हुए सिद्ध साहित्य में मद्य एवं मैथुन सेवन को महत्व दिया गया है । पूर्वी प्रयोगों की बहुलता से युक्त इसकी भाषा अपभ्रंश है ।[1]

सिद्ध कवि और काव्य :-

विद्वानों ने सिद्ध सरह को सिद्ध काव्य का प्रथम प्रणेता माना है । यह स्वीकार किया गया है कि सिद्धों के प्राचीन पुरुष सरोज वज्र या सरहपाद हैं जो पालवंशी नरेश धर्मपाल (770 - 809 ई0) के समकालीन थे । इसीलिए इनका समय 8वीं शती माना गया है । यह ब्राह्मण थे किन्तु इनके प्रथम शिष्य लुइपा कायस्थ और लुइपा के शिष्य दारिकपा उड़ीसा के राजा थे । डेंगीपा उन्हीं का मन्त्रिमात्य था । सरोजवज्र के द्वितीय शिष्य नागार्जुन ने ही शून्यवाद की प्रतिष्ठा की थी । सरहपाद एक उच्च कोटि के साहित्यकार भी थे ।[2] सरह को सिद्धों का प्रतिनिधि मान कर यह कहा जा सकता है कि सिद्ध काव्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है ।[3] डा0 देवेन्द्र कुमार जैन ने सिद्ध साहित्यकारों का विवरण देते हुए लिखा है कि लुइपा को आदि सिद्धाचार्य भी माना जाता है । सम्भवतः यह बंगाली थे । संस्कृत में इनकी चार पुस्तकें सुलभ हैं किन्तु अपभ्रंश में इनकी दो रचनाएँ सुलभ हैं जिन्हें 'तत्व स्वभाव दोहा कोष' और 'गीतिका दृष्टि' नाम से जाना जाता है । लुइपा के गीतों का संकलन गीतिका में किया गया है । ये गीत प्रायः पद हैं । लुइपा के दरीपद किलपा थे जो आचार्य और सिद्ध थे । इनकी रचना 'दोहा चर्या गीतिका दृष्टि' है पर यह अनुपलब्ध है । 'वीर साधन' और 'बलनिधि' नामक पुस्तकों के रचयिता दीपशंकर भी सिद्ध कवि थे । भुसुकपा को तारानाथ ने यद्यपि सौराष्ट्र का माना है फिर भी, वे बहुत समय तक मगध और नालन्दा में रहे । कुछ लोगों ने इनका दूसरा नाम शान्तिदेव और राउत भी बताया है । इन्होंने तन्त्र साधना पर दो पुस्तकें लिखीं । कृष्णाचार्य का एक नाम कण्हपाद भी है । इनके द्वारा लिखी गई 53 पुस्तकें बताई जाती हैं । अपभ्रंश में 'दोहा कोष' और 'कण्हपाद गीतिका' की दो रचना की गयी है । इनकी कृतियों की सही संख्या संदिग्ध है । सिद्ध कवि

1- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : पृष्ठ - 53
2- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास : पृष्ठ - 460
3- गोरखनाथ और उनका युग : पृष्ठ - 162

धर्मपाद का दूसरा नाम गुंडरीपाद भी था । इनके गानों के कुल दो पद मिलते हैं, जिसमें अधिकांश तद्भव शब्दों का ही प्रयोग किया गया है । टेंटीपा का एक ही गीत मिलता है । महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने इसमें 24 शब्द पुरानी बंगला तथा 13 शब्द नयी बंगला भाषा के बताए हैं । महीधर के नाम से भी एक पद मिलता है । सरह के नाम से 'दोहा कोष गीति', 'दोहा चर्या गीति,' 'दोहा कोष उपदेश गीति', 'तत्वोपदेश शिखर दोहा कोष' आदि रचनाएं बताई जाती हैं । सिद्ध कवि दरिकपाद ने अपनी पुस्तक 'प्रज्ञापारमिता उपदेश' में हेरुक भगवान की उपासना का विधान बताया है । इसी प्रकार कंकण को 'चर्या दोहा कोष गीतिका' और तिल्पा को 'दिल्पगीतिका', 'विरूपद चतुर गीति', 'कर्म चण्डालिका दोहा कोष गीतिका', 'विरूपव्रज गीतिका' प्रसिद्ध हैं । शान्तिपा के नाम से कुल दो पद उपलब्ध हैं । आर्यदेव का भी एक गान मिलता है । जयनन्दी के नाम से एक गान सुलभ है । डोम्बीपा का एक ही गान प्राप्य है । भदेपाद एवं वीणापाद के भी एक ही एक गान मिलते हैं । मैत्रीपाद की 'गुरु मैत्री गीतिका', 'गुरुभट्टारक वृष्टि ज्ञानकी', 'वज्रगीतिका' और 'गीतिका' मिलती है । मातृचेट की 'मातृचेटिका' ही सुलभ है । नाण्ड पण्डित की 'वज्रगीतिका' तथा 'नागपण्डित गीतिका' बताई जाती है । कुक्कुरीपाद महामाया के उपासक थे । इनके दो गान मिलते हैं । अद्वयवज्र द्वारा लिखे गए ग्रन्थों में 'दोहा कोष', 'हृदय चर्या गीता टीका', 'चतुर्वज्र गीतिका', 'अद्वयवज्र बौद्ध संकीर्तन पदावली' बतायी जाती है । खगण द्वारा लिखित 'दोहा तत्व गीतिका' की चर्चा की जाती है और महासुखता वज्र की 'महासुखता गीतिका' प्रसिद्ध है । नागार्जुन जो दार्शनिक नागार्जुन से भिन्न थे की 'नागार्जुन गीतिका' बताई जाती है ।[1]

अपभ्रंश साहित्य में सिद्ध कवियों द्वारा लिखित समस्त सिद्ध साहित्य बौद्ध दोहा और चर्यापदों में पाया जाता है ।[2] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध कवियों की रचनाओं को 'दोहा कोष' के रूप में संकलित करके हिन्दी साहित्य को आदिकालीन काव्य-धारा की एक व्यवस्था प्रदान कर दी है । उनके अनुसार सिद्ध

1- अपभ्रंश भाषा और साहित्य : पृष्ठ 82-84

2- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : पृष्ठ - 348

सरहपा तक पहुंचते-पहुंचते संस्कृत और प्राकृत भाषाओं की साहित्यिक संरचना अपने अवसान कालीन चरण पर आ चुकी थी । इस प्रकार लोक भाषा में काव्य के नए आयाम सिद्धों की वाणियों के रूप में दोहा कोष और चर्या गीत के रूप में उद्घाटित हुए । तिब्बत को भारतीय संस्कृति की सम्पदा का रक्षक मानते हुए राहुल जी ने यह घोषित किया है कि सिद्धों के जिस दोहा कोष का मैंने संकलन किया है, वह समस्त तिब्बत व्यापी अध्ययन का परिणाम है ।[1]

बौद्ध सिद्धों के चर्या गीत :-

आचार्य पण्डित परशुराम चतुर्वेदी ने चर्या शब्द की व्याख्या करते हुए यह बताया है कि आचरण अथवा आचरणीय शब्द जो अर्थ देते हैं, यह उसी का पर्याय है । किन्तु बौद्धों की पारिभाषिक शब्दावली में इससे विधिनिषेधात्मक नियमों का बोध होता है । चर्या में विहित धर्माचरण की विवेचना की जाती है । बोधि चर्या में उल्लेख किया है कि बोधित्व प्राप्त करने के लिए पालन किए जाने वाले आचरण ही चर्या है ।[2] चर्या पद की व्याख्या करते हुए अन्यत्र बताया गया है कि पद का अर्थ गेय शब्द से है जिसे हम गीत का पर्याय मान सकते हैं । इन्हें चर्यापद और चर्यागीत दोनों संज्ञाओं से जाना जाता है । बताया जाता है कि चर्यागीत शब्द का प्रयोग 17वीं शती तक एक विशिष्ट संगीत पद्धति के लिए होने लगा था ।[3]

बौद्ध सिद्धों के चर्या पदों का एक संग्रह पण्डित हर प्रसाद शास्त्री ने 'हाजार बछोर पुराना बांगला भाषाय बौद्ध गान ओ दोहा' पुस्तक के अन्तर्गत 1916 ई० में तैयार किया था । इनमें 23 सिद्ध कवियों के 50 चर्या गीत संकलित हैं ।[4] भिक्षु धर्म रक्षित ने चर्या पदों के चार भेद किए हैं – प्रथम बोध चर्या, जिसमें बोधित्व के अंगों का अभ्यास वर्णित है । द्वितीय अभिज्ञान चर्या, जिसे ज्ञानाभ्यास कह सकते हैं । तृतीय पारमिता चर्या जो पूर्णता का अभ्यास ही माना गया है । चतुर्थ स्थान पर तत्व परिपाक चर्या का उल्लेख किया गया है जिसे जीव कल्याणादि का उपदेश बताया गया है ।[5]

1- राहुल सांकृत्यायन : दोहा कोष (भूमिका) : पृष्ठ - 79
2- बौद्ध सिद्धों के चर्या गीत (उपक्रम) : पृष्ठ - 9
3- इण्डियन लिटरेचर : भाग - 1 : पृष्ठ - 40
4- बौद्ध सिद्धों के चर्या गीत : पृष्ठ - 18 - 19
5- 'ए सर्वे आफ बुद्धिज्म : संस्करण - 3 : 1966 : (बंगलोर) : पृष्ठ - 464

सिद्ध साहित्य के इस मूल्यांकन से तो यह स्पष्ट हो गया है कि नाथ पंथ एक तो सिद्ध साधना की कुक्षि से ही जन्मा है और दूसरे इन नाथों को भी सिद्धों के ही तृतीय वर्ग में माना गया है। इन उभय साधना सम्प्रदायों में दोनों ही कोटि के साहित्य का परिचय पाना यहाँ आवश्यक था इसलिए कतिपय शब्दों में नाथ पंथ और उसके साहित्य पर प्रकाश डाल देना वांछित है।

नाथ पंथ और उसका साहित्य :-

आदिकाल के उत्तरवर्ती भाग में वज्रयानी सिद्धों की सहज साधना से नाथ पंथ का प्रवर्तन हुआ था। सहज साधना का जो शिलान्यास सिद्धों ने किया था, नाथ पंथी योगियों ने उस पर अपने भक्ति का राजमहल तैयार किया है। नाथ पंथ की ईश्वर विषयक भावना शून्यवाद में निहित है। इसकी उद्भावना वज्रयानी साधना से हुई है। इसीलिए इस सम्प्रदाय को सिद्ध सम्प्रदाय का विकसित रूप माना गया है। सिद्धों की विचार धारा और उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों और रूपकों को अपना कर ही नाथों ने अपनी नयी साधना पद्धति का निर्माण किया था। इनकी शैली में निरीश्वर वादी शून्य ईश्वरवादी शून्य बन गया है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि नाथ सम्प्रदाय कौल पंथ से भी प्रभावित हुआ था इसीलिए नाथों ने अष्टांग योग की साधना पर बल दिया है।[1]

नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक के रूप में गोरखनाथ को स्वीकार किया गया है जिन्हें सिद्धों की नामावली में गोरक्षपा अथवा गोरक्षपाद के रूप में पहचाना जाता है। ये गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य बताए जाते हैं। गोरखनाथ के काल निर्धारण करने में विद्वान एक मत नहीं है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय विक्रम सं० 902 माना है।[2] किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने यह घोषित करते हुए कि गोरखनाथ के सम्बन्ध में अभी पूर्ण सामग्री उपलब्ध नहीं हो पायी है, यह भी कहा है कि यदि सिद्धों के गोरक्षपा को नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गोरखनाथ हैं और उन्होंने जो वज्रयानी प्रभाव में शैव मत का सहारा लेकर नाथ सम्प्रदाय चलाया तो निश्चित ही राहुल जी की मान्यता ठीक है।[3] किन्तु हो सकता है कि सम्वत् 1257

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ 143-44
2- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 156
3- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृष्ठ - 152

तक चलने वाली सिद्धों की परम्परा में गोरखनाथ 10वीं शताब्दी में जन्मे हों लेकिन सिद्धों की परम्परा में 9वें सिद्ध होने वाले गोरखनाथ 13वीं शती में जन्मे थे । तिब्बती जनश्रुति में गोरखनाथ को एक बौद्ध बाजीगर माना गया है और बताया जाता है कि उनके सभी कनफटे शिष्य आदि में बौद्ध थे, किन्तु 12वीं शती में वे शैव मत का सहारा लेकर शैव हो गये थे ।[1] जो भी हो इस सम्प्रदाय के साहित्य की रचना अवधि 10वीं से 14वीं शती तक 400 वर्ष में फैली है । हमारे शोध का मूल मन्तव्य इसी साहित्य की प्रशस्ति का अनुशीलन है । इस साहित्य के रचयिता नाथ ही थे, उनकी संख्या नौ बताई जाती है । इन नवों नाथों के नाम निम्नवत् हैं –

1- आदिनाथ
2- मत्स्येन्द्र नाथ
3- गोरक्षनाथ
4- गाहिणीनाथ
5- चर्पटनाथ
6- चौरंगीनाथ
7- ज्वालेन्द्रनाथ
8- भर्तृनाथ
9- गोपीचन्द नाथ या गोपीनाथ ।

चिन्त्य यह है कि इस सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य आदिनाथ थे जरूर किन्तु परवर्ती सन्तों ने उन्हें शिव मान लिया था और दूसरी ओर मत्स्येन्द्रनाथ जो गोरक्ष के गुरु थे, गोरक्ष को ही योग का अधिकारी और आचार्य मान लिए जाने का आरोप किया था । शायद इसीलिए इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक के रूप में तृतीय स्थान पर आने वाले गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक और सबसे अधिक महिमावान नाथ पंथी गुरु माने गए । मत्स्येन्द्रनाथ को मछंदरनाथ तथा मीन नाथ भी कहा गया है ।[1] इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ से प्राप्त की थी । बताया जाता है कि जिस समय सिन्धु तट पर बैठे आदिनाथ शिव-पार्वती को योग की शिक्षा दे रहे थे,

---

1- एसाइक्लोपीडिया आफ रेलीजन एण्ड एथिक्स, भाग 6, पृष्ठ - 328

पार्वती को नींद आ गयी किन्तु मछली के रूप में विद्यमान यह व्यक्ति योग विद्या के समूचे रहस्य को सुन गया । इसीलिए इनका नाम मत्स्येन्द्र नाथ पड़ा । कहा गया है कि चोरी से शिव को योग शिक्षा ग्रहण कर लेने के कारण शिव ने इन्हें कामासक्त होने का अभिशाप दे दिया था और इसी लिए उन्हें सिंघल में जाने पर पद्मिनी के रूप पर मोहित होकर वहीं रह जाना पड़ा था । ज्ञान प्राप्त होने पर वे पद्मिनी को छोड़ कर उसकी कुक्षि से उत्पन्न अपने दोनों पुत्र पारसनाथ और निमिनाथ को लेकर पुनः नेपाल चले आए ।

गाहिणीनाथ गोरख के शिष्य थे । इनका दूसरा नाम गैनीनाथ भी था । इन्होंने गोविन्द चन्द्र को ब्रह्मोपदेश दिया था । इनका समय 13वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है । पाँचवें नाथ पंथी सन्त चर्पटनाथ थे, जिनका जन्म मत्स्यपुराण में हुआ था । जाति के ये ब्राह्मण थे और इनका पूर्व का नाम चरकानन्द था । इन्हें कुछ लोग गोरखनाथ का तथा कुछ लोग बालानाथ का शिष्य मानते हैं । प्रख्यात 'भगत पूरन' लोका नाथ पंथी नाम चौरंगीनाथ था । नागराज धारक तथा क्रमानी कुमारी से उत्पन्न शालिवाहन नामक राजा के पुत्र थे । इनके अभिशप्त जीवन से इन्हें उबार कर गोरखनाथ ने इन्हें सुन्दर स्वरूप प्रदान किया था । नाथ परम्परा में आने वाले ज्वालेन्द्रनाथ गोपीचन्द्र के गुरु थे । भर्तृनाथ का अन्य नाम भर्तृहरि या भरथरी था । ये राजा थे । यह जलन्धरपा के शिष्य थे । गोपीचन्द ज्वालेन्द्रनाथ के शिष्य थे, यह बताया जा चुका है । ये योग - साधना में आस्था रखते थे । गोपीचन्द के गीतनाथ साहित्य में ही नहीं, तत्कालीन लोक जीवन में भी बहुत ही लोकप्रिय रहे । इनके गीतों से दूर-दूर तक नाथों का साम्प्रदायिक सिद्धान्त जनता के मानस लोक में फैलता रहा ।

सम्प्रदाय और साहित्य :-

यह बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ थे । इस सम्प्रदाय के साहित्य की स्थिति को स्पष्टतया रेखांकित तो नहीं किया जा सकता, फिर भी यह मानना पड़ता है कि इस सम्प्रदाय में सिद्धान्त एवं परिस्थिति के अनुकूल पर्याप्त साहित्य रचा गया है । यही कारण है कि नाथ सम्प्रदाय

का समस्त साहित्य, प्रामाणिकता के विचार से गोरखनाथ के साहित्य पर अवलम्बित है। इस सम्प्रदाय के साहित्य में मुख्य रूप से योगियों के लिए उपदेश या शिक्षा का ही विधान किया गया है। प्रसंगानुसार नीति, समाजाचार, हठयोगी साधना, संसार की निस्सारता, साधना मार्ग का महत्त्व और उसकी वक्रता, गुरु की महिमा आदि विषयों पर विशद विवेचन किया गया है।[1] कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि नाथ साहित्य और सम्प्रदाय पर कौल साधना का भी व्यापक प्रभाव था। कौलों की अष्टांग योग भावना को नाथों ने साधना के रूप में अपनाया। नाथों ने कौलों की आभचार प्रवृत्ति का तीव्रतम विरोध किया है।[2] जो भी हो इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य गोरख का है। गोरख के शिष्यों ने 'कापिर बोध', 'अवलि सलूक' नामक रचनाएं की हैं। गोरख के शिष्यों ने हिन्दू - मुस्लिम धर्म का अन्तर अस्वीकारते हुए दोनों को प्रभु का सेवक माना है।[3]

इस काल के नाथ सिद्धों के साहित्य में प्राचीनतम साहित्यिक व्यक्तित्व गोरखनाथ का है। अपभ्रंश साहित्य में बौद्ध सिद्धों की साहित्यिक परम्परा का प्रभित विकास नाथ पंथी सिद्धों का साहित्य है। गोरखनाथ की 40 रचनाओं का उल्लेख किया गया है। जहाँ तक गोरख के शिष्यों की साधना परक साहित्यिक रचना का प्रश्न है, उनमें धर्म एवं राजनीति से सम्बद्ध छन्दों की भी रचना की गयी है।[4] नाथों की मूल साम्प्रदायिक रचना के अन्तर्गत अन्य कई सम्प्रदाय भी थे — गोरखपंथी पंगल का अरदासा, मीन नाथ सिखनीर, पारसनाथ पूजा। अन्त के दो पंथ जैनी हैं। योगियों में हिन्दू - मुसलमान दोनों थे। इस काल में योग तन्त्र, वज्रयान, कालचक्र यान, शाक्त सम्प्रदाय आदि शैव मत के विभिन्न भेद कापालिक मत, रसेश्वर मत, त्रिपुर सम्प्रदाय, दत्तात्रेय, सहजिया सम्प्रदाय आदि का महत्त्व था।[5]

नाथ सम्प्रदाय एवं उसके साहित्य के सम्बन्ध में डा० वार्ष्णेय का विचार विशेष महत्त्वपूर्ण है — "बौद्धों की वज्रयान शाखा से सम्बन्धित गोरखनाथ का नाथ पंथ है। वे देवता और सर्वशक्तिशाली व्यक्ति के रूप में माने जाते हैं। वास्तव में गोरख

- -

1- आदिकाल की भूमिका : पृष्ठ 126 - 128
2- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : पृष्ठ - 29
3- डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : पृष्ठ - 9
4- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास : भाग - 1 : पृष्ठ 405 - 406
5- गोरखनाथ और उनका युग : भूमिका : पृ० च तथा छ।

पंथ सिद्ध युग एवं सतयुग को कड़ी के रूप में है । गोरख बोध, दत्तगोरख संवाद, गोरखनाथ जी के पद, योगेश्वरी साखी, गोरखसार, महादेव - गोरख संवाद आदि गोरखनाथ के ग्रंथ माने जाते हैं । x x x x सिद्धों की अश्लील परिपाटी को त्याग कर नाथों ने अपने को उनसे अलग रख कर हठयोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाया । व्यवहारिक दृष्टि से उनका योग मार्ग पतंजलि के योग सूत्र पर आधारित था । दार्शनिक दृष्टि से उनमें शिव - शक्ति की भावना पाई जाती है । कबीर जैसे सन्तों के साहित्य की नींव नाथों ने ही डाली थी । नाथ पंथियों का क्षेत्र राजपूताना और पंजाब अर्थात् पश्चिमी भारत था । नाथों की संख्या नौ मानी जाती है — नागार्जुन, जड़ भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जालन्धर और मलयार्जुन । (उल्लेखनीय है कि इन नामों से डा0 रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत नौ नाथों की सूची में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है ।) नाथ पंथियों का मुसलमान सूफी कवियों से भी स्पर्द्धा था । नाथ पंथी एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे । उनके सम्प्रदाय में मूर्ति पूजा और बहुदेव वाद के लिए कोई स्थान नहीं था । उन्होंने संसार पर अधिक जोर न देकर घर में रह कर ही ईश्वर प्राप्ति पर जोर दिया । उनकी दृष्टि में जप, वेद, तीर्थ आदि का कोई महत्व नहीं । उन्होंने परमात्मा को अपने हृदय में ही खोजने का उपदेश दिया । नाथों के सम्प्रदाय का प्रचार भी निम्न और अशिक्षित लोगों में अधिक हुआ जो प्राचीन ग्रन्थों के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ थे । किन्तु वे पण्डितों का मजाक अवश्य बनाते थे । x x x x उनकी रचनाओं में तान्त्रिक विधान, योग साधन, आत्म - निग्रह, श्वास निरोध आदि बातें पाई जाती हैं ।[1]

नाथों की बानियाँ हिन्दी काव्य के आदिकाल की रचनाएँ मानी जाती हैं ।[2] गोरखनाथ की बानियों का प्रामाणिक संकलन डा0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने सम्पादित किया है जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सं0 1999 में प्रकाशित हुआ है । इसमें गोरखनाथ की 40 रचनाओं की सूची दी गयी है जिसका उल्लेख इस शोधप्रबन्ध के तीसरे अध्याय में नाथ काव्य के विवरण के अन्तर्गत किया जा चुका है ।[3]

1- डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य का इतिहास : 1955 ई0: पृ0 32-33
2- डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल : पृ0 - 40
3- इस शोधप्रबंध के अध्याय-3 पृ0 121 का अवलोकन करें ।

सिद्ध - नाथ काव्य में प्रशस्ति :-

नाथ पंथियों में अधिक महिमावान एवं इस मत के जनक गोरखनाथ के भाव - बोध अथवा विषय परम्परा का ही विकास समस्त नाथ सम्प्रदाय के काव्य में पाया जाता है । गोरख की कविता थी तो आध्यात्मिक कोण से जीवन का चित्र किन्तु उस चित्र में सामाजिक जीवन की जागृत अनुभूतियों ने सहज ही आकार ग्रहण कर लिया था ।[1] इसीलिए उसमें विषमता की अवस्थिति स्वीकारनी पड़ती है । यह भी स्पष्ट है कि यह विषमता सामन्तीय बोध वाली नहीं थी, उसमें मनुष्य के अन्तरंग की हलचल के ही चित्र थे । इसे सम्पूर्णता के साथ अवलोकित किया जाए तो उसमें समाज का ही स्वरूप झलकेगा ।[1] सिद्ध काव्य का शून्यवाद और गुह्य साधना मार्गों में जीकर वाद और सहजाचार बन गई है । मूल भूत सन्त भाव दोनों का एक ही था और यह भाव प्रायः उभय प्रकार के कवियों ने एक ही प्रकार शैली में व्यंजित किया । दोनों काव्य के प्रणेता कवि पूर्वापर परम्परा से सम्बद्ध थे । इसलिए इनकी काव्यगत उपलब्धियों के रूप में प्रशस्ति भाव का अनुशीलन एक साथ ही किया जा रहा है ।

सिद्ध नाथ काव्य क्योंकि धार्मिक ही है, इसलिए इसमें भी प्रशस्ति के वे ही रूप प्रायः उपलब्ध हैं जो जैन काव्य में विद्यमान पाए गए हैं । अब आवश्यक यह है कि इस काव्य में प्राप्त प्रशस्ति के रूपों का अनुशीलन कर लिया जाए । अनुभव यह किया जा रहा है कि नाथों की वाणियों में भी प्रणति एवं समाराधना, शरणागति भाव, स्तुति एवं वन्दना, यशगान, सम्पदा एवं वैभव - वर्णन आदि के रूप में प्रशस्ति का प्रवाह प्रवाहित हुआ है । इसका विश्लेषण ही अब आगे का विषय है ।

प्रणति एवं समाराधना :-

भारतीय धर्म साधना के तीन चरण सदा ही स्पष्ट रहे हैं । ये ही धर्म साधना की तीन अवस्थाएं हैं जिन्हें हम ज्ञान की साधना, कर्म की साधना तथा भक्ति की साधना कहते हैं । नाथ सम्प्रदाय में यद्यपि कर्म और ज्ञान का ही

1- गोरखनाथ और उनका युग : पृष्ठ 222-23

स्वर प्रधान रहा फिर भी भक्ति का स्त्रोत प्रस्फुटित हुआ है, अलबत्ता उसमें गलदश्रु-भावुकता को महत्व नहीं दिया गया ।[1] इस सम्प्रदाय में गुरु - शिष्य परम्परा का स्वरूप अत्यन्त गरिमा मण्डित रहा और गुरु को ब्रह्म के समान ही महनीय माना गया । परिणामतः नाथ पंथ में गुरुओं के यशगान, उनकी प्रणति एवं समाराधना के साथ - साथ उनके चमत्कारों की चर्चाएं पर्याप्त महत्वपूर्ण ढंग से सामने लाई गई हैं । फलतः नाथ सम्प्रदाय के काव्य में प्रणति एवं समाराधना के स्वर में अलौकिक अथवा दैवी कोटि की प्रशस्ति के दर्शन होते हैं । अनुचित न होगा यहाँ यदि हम इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोरख का वह गद्यांश प्रस्तुत करें जिसे प्रायः सभी साहित्यकारों ने एक मत होकर उनके ही द्वारा लिखा माना है और जिसमें गुरु के विषय में दिए गए वक्तव्य में गुरु - ब्रह्म की सभी प्रकार की प्रशस्ति के स्वर अनुगुंजित हैं —

'श्री गुरु परमानन्द तिनकौं दण्डवत है । हैं कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है शरीर जिन्हिको जिन्हीं के नित्य गायें तें शरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है । मैं जु हौं गोरखि सो मछन्दर नाथ को दण्डवत् करत हौं । हैं कैसे वे मछन्दर नाथ ॥ आत्मा ज्योति निश्चल है, अन्तः करन जिन्हिको अरु मूल द्वार तें छइ चक्र जिनि नीकी तरह जाने ॥ अरु जुग कालकल्प इनकी रचना तत्व जिनि गायो । सुगन्ध को समुद्र तिन्हि को मेरी दण्डवत् है । स्वामी तुम्हे तौ सतगुरु अम्हे तौ सिष सब्द एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मनि न करिबा रोस ।'

इस अवतरण की भाषा शैली जो भी हो, गद्य जैसी भी कोटि का माना जाय, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इसका मूलभाव गुरुमहिमा या गुरु विषयक प्रशस्ति ही है । 'दण्डवत्' शब्द की बार-बार आवृत्ति से इसमें प्रणति एवं समाराधना की ही गन्ध प्रधान रूप से पाई जाती है । नाथ सम्प्रदाय की यही प्रवृत्ति समस्त काव्य में पाई जाने वाली प्रशस्ति के स्वर को दिशा देती रही है । गोरखनाथ ने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की आरती गाते हुए अथवा आराधना करते हुए उनकी प्रशस्ति का गान बड़े ही सबल स्वरों में किया है —

1- नाथ पंथ और निर्गुण सन्त काव्य : पृष्ठ - 125

'नाथ निरंजन आरती गाऊँ ।
गुरु दयाल अग्या जो पाऊँ ॥
जहाँ अनंत सिधा मिलि आरती गाईं ।
तहाँ जम की बाच न नेड़ी आईं ॥
जहाँ जोगेश्वर हरि कूं ध्यावै ।
चन्द सूर तहाँ धूर नवावैं ॥
मछिन्द्र प्रसादि जती गोरखनाथ आरती गावै ।
नूर झिलमिल जोती तहाँ जनत न आवै ॥'[1]

उल्लेख्य यह है कि गोरखनाथ प्रथमतः सिद्ध ही थे जो बाद में नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक बने । उनकी रचनाएँ भी अपनी प्रवृत्ति के आधार पर सिद्धों से सीधी जुड़ी हुई हैं । नाथ सम्प्रदाय प्रवर्तक की समाराधना मूलक प्रशस्ति की सिद्ध सम्प्रदाय के प्रथम सिद्ध कवि सरहपा की गुरु - प्रशस्ति से बड़ा साम्य है ।[2] दयालु हृदय गुरु की आज्ञा प्राप्त करके निरंजन नाथ की आरती गाते हुए गोरखनाथ कहना चाहते हैं कि उस समय सभी सिद्ध आरती गाने लगते हैं और तब यम यातनाएँ भाग खड़ी होती हैं, योगेश्वरों के उस ध्यानास्थल के प्रति सूर्य - चन्द्रमा भी झुकते हैं । यह सब गुरु मत्स्येन्द्र नाथ के प्रसाद के प्रभाव से ही होता है ।

नाथों की भावना का बीज सिद्धों की वाणियों में विराजमान थे । गुरु - विषयक प्रशस्ति की जो सश्रद्ध भावना नाथों में दिखाई दे रही थी, सिद्धों में उसका स्वभाव अटपटी वाणी के द्वारा रेखांकित किया जा चुका था । भुसुकपा की वाणियों में गुरु एवं ईश्वर विषयक प्रशस्ति भाव का अच्छा उदाहरण दिखायी पड़ता है । गुरु की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं -

'तब्बे मूसा चंचल चंचल । सद गुरु बोध करहु सो निश्चल ॥
जब्बे मूसा संचरा टूटै । भुसुक भने तब्बे बन्धन छूटै ॥'[3]

यम-यातना के बन्धन से उन्मुक्ति गुरु द्वारा प्रदत्त बोध से ही सम्भव

1- डा० वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृष्ठ 33 से उद्धृत ।
2- हिन्दी काव्य धारा : संस्करण । : पृष्ठ - 9 : छन्द संख्या 56
3- वही : पृष्ठ - 133

है । उनका विचार है कि माया जाल साधक के लिए सबसे बड़ी बाधा है । इसका रहस्य सद्गुरु के सहारे ही बूझा जा सकता है । इसी क्रम में वे ईश्वरीयता की प्रशस्ति प्रस्तुत करते हैं और मानते हैं कि –

'जाधु सुनत टूटै बन्धजाल । निःसुए निजमन देइ उलास ।
विषय विशुद्धे मैं बुझिउ आनंदा । गगनहिं जिमि उजाला चन्दा ॥
सहि तिलोके एहुहि सारा । जोइ मुद्धक फटै अँधियारा ॥'[1]

सिद्ध डुम्पा ने भी भुसुकपा के समान गुरु विषयक आराधना मूलक प्रशस्ति की पंक्तियाँ रची थीं । उनके विचार से पंचेन्द्रियों से युक्त इस शरीर के बीच वास करने वाली चित्त की चंचलता में काल प्रविष्ट होकर बैठा है । गुरु की ही इसका सही ज्ञान है । अतः उनकी कृपा से ही महासुख सुलभ हो सकता है –

'काआ तरुवर पंचेवि डाल । चंचल चिते पइठा काल ।
दृढ़ करि महासुह परिमान । लुई भन गुरु पूच्छिय जान ॥'[2]

इस धारा का अजीर साहित्य ईसा की प्रथम शती से ही मिलता है जिसे महायान एवं हीनयान की शाखाओं में देखा जाता है । इनमें दोनों यानों की महत्ता के प्रतिपादन का ही स्वर प्रधानतया मुखरित है ।[3]

नाथ-सिद्धों की बानियों का जो सम्पादन डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है, उसमें भी कतिपय सिद्ध नाथों की रचनाओं में प्रशस्ति का स्वरूप देखने को मिलता है । आराधना एवं प्रणति मूलक प्रशस्ति का यह स्वर स्तोत्र काव्य का भी उत्तम उदाहरण है । सिद्ध की वन्दना करते हुए प्रेमदास जी लिखते हैं –

'नमो नमो निरंजनं भरम को विहंडनं ।
नमो गुर देवं अगम पंथ भेवं ॥ 1 ॥
नमो आदेनाथं भए हैं सनाथं ।
नमो सिध मछिन्द्रं बड़ो जोगिन्द्रं ॥ 2 ॥

1- हिन्दी काव्य धारा : संस्करण - 1 : पृष्ठ - 135
2- वही : पृष्ठ - 137
3- डा० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय : तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य : पृ०-34

नमो गोरख सिधं जोग जुगति विधं ।
नमो चरणरायं गुरु थान पायं ॥ 3 ॥'[1]

प्रेमदास जी द्वारा लिखित गोरख आदि सिद्धों की वन्दना में लिखी गयी इन पंक्तियों की भाव - सम्पदा का स्वर स्पष्ट रूप से अलौकिक प्रशस्ति की परम्परा का स्वस्थ उदाहरण है । अन्य दृष्टि से इस रचना को भक्ति काव्य की कोटि में परिगणित किया जाएगा पर यह हम स्पष्ट कर चुके हैं कि प्रशंसा मूलक वक्तव्य दिव्य पात्रों से सम्बद्ध होकर 'प्रशस्ति' का दिव्य रूप सामने रखते हैं और उक्त पंक्तियों में वह दिव्यता देखी जाती है । नाथ - सिद्ध साहित्य में एक नाथ भूतलिंग की भी वन्दना की गयी है । शंकर यहाँ आदिनाथ आदि सिद्ध हैं । यह बताने कहने की यद्यपि जरूरत नहीं है कि नाथ - सिद्धों का साम्प्रदायिक बीज बौद्ध - चेतना में जन्मा था । परन्तु आगे चल कर उस पर 'शिव' की महिमा चौतरफा छा गयी थी । दिगम्बर शंकर सिद्धों की दिगम्बरी वृत्ति के मूल कारण-देव थे । उनकी आराधना के गीत सिद्ध स्तोत्रों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं --

'जटा जूट विभूति भूषनं, नभ रूष आषिडनं ॥
विरध्य नव देहलीला, सोई दर्स दिगंबरं ॥ 34 ॥'[2]

सिद्ध - परम्परा में गोपीचन्द का नाम लोकप्रियता की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय है । उन्होंने अपनी पद्धति, अपना परिचय प्रस्तुत करते हुए अपने गुरु गोरखनाथ, गुरु भाई चरपट तथा मैनावती का सश्रद्ध स्मरण करके अपनी संवेदना में प्रशस्ति का पुट दे रखा है । पंक्तियाँ नीचे अवलोकनार्थ दी जा रही हैं --

'गुरु हमारे गोरख बोलिये ।
चरपट हे. गुर भाई ॥
सबद एक हमकौं नाथ जी दीया ।
तबी सब्बा मैणावत माई ॥ 102 ॥'[3]

1- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ सिद्धों की बानियाँ : पृष्ठ - 3
2- वही : पृष्ठ - 5
3- नाथ - सिद्धों की बानियाँ : पृष्ठ -13

जिस सतगुरु का ऊपर नाम स्मरण किया गया है, वह गोपीचन्द के लिए सिरध्य है, पूज्य है । गोपीचन्द अपना सिद्धि हेतु जालन्धर से मिली सीख का भी यशगान करते हैं –

'जालंध्री प्रसादें जती गोपीचन्द बोल्या ।
गुरु नैं गालि न दीज्यौ रो ।
सतगुर म्हारा मस्तक ऊपरि ।
और भले रहा की जो रो ॥ '[1]

नाथ - सिद्ध चौरंगीनाथ का नाम नौ नाथों की कड़ी में नामांकित है । वे मत्स्येन्द्रनाथ की वन्दना करते हैं और कहते हैं –

'श्री मछन्द्रनाथ गुरुदेव, नमस्कार करीला,
नाइलःभा ग ॥ 207 ॥
आशीरवाद पावला अम्हि मनि भइला हरषित,
रोठ, पंठ ताहु का रे हु नाई ल,
धर्म ना रूप मछन्द्रनाथ स्वामी ॥ 208 ॥'
xxx xxx xxxx
'सतगुर वचने लिल उपदेस भियो भ्रित पीर पारं,
गुसाईं वचनै भइला दिढ़ बुध ॥ 209 ॥ '[2]

योगियों में 'रुद्राक्ष' की साधनागत बड़ी बलवती महिमा मानी गयी है । सिद्ध - नाथ योगियों से ही रुद्राक्ष की सम्मानीनुबी मान्यता लोक जीवन में अवतरित हुई ही जान पड़ती है । इस रुद्राक्ष महिमा में लिखे गए रुद्राक्ष स्तोत्र के अन्दर गुरु महिमा काही आरम्भ में वर्णन किया गया है, जिसे हम प्रशस्ति भावना के रूप में ही देख सकते हैं –

'ॐ नमो आदेस गुरु दूं
अकल सकल के तेज बायो,
समिर में एक वृक्ष लगायो ।
- - - - - - - - - - - - - ॥'[3]

1- नाथ - सिद्धों की बानियाँ : पृष्ठ - 21
2- वही : पृष्ठ - 37
3- वही : पृष्ठ - 47

चौरंगीनाथ ने बड़ी व्यापकता एवं स्पष्ट शब्दावली में अपने गुरु की महत्ता का यशमूलक गायन किया है । गुरु - वन्दना का इतना पूर्ण उदाहरण सिद्ध - नाथों की वाणी में हमें कम दिखाई पड़ता है । उनका भाव है कि यतीन्द्र जटाधारी यती को सदा स्मरण करते हैं, श्री रामचन्द्र, वशिष्ठ, ध्रुव, प्रह्लाद आदि के भी वे ध्यातव्य हैं । वे अनहत शब्द के प्रकाशक होकर अजर, अमर, अडोल आसन पर विराजमान हैं और सुर नर मुनि सभी का उनके द्वारा आह्वान होता है -

'ॐ गुरु जी - बाल स्वरूप जतिन्द्र,
जटाधर ध्यावते षट भुज जति ।
श्री रामचन्द्र, वशिष्ठ, हनुमत, ध्रुव, प्रह्लाद रतिपति ॥ 1 ॥
ॐ गुरु जी - सेली नाद सुकर्ण साजत,
अनहद शब्द प्रकाशितम् ।
अजर अमर अडोल आसन,
सुर नर मुनि मन रंजितम् ॥ 2 ॥'[1]

महिमा गान :-

जिस काव्य एवं सम्प्रदाय में वन्दना एवं प्रणति की भाव - धारा का प्रवाह प्रवाहित होगा उसमें आराध्य की महिमा का गान स्वाभाविक रूप में पाया जाएगा । सिद्ध - नाथों की रचनाओं में गुरु एवं ईश्वर की महिमा का भी मुक्त कण्ठ से बखान किया गया है । सिद्ध - नाथों की रचनाएं धर्म एवं साधना के प्रचार-प्रसार के लिए एक साधन मात्र थीं । अतः उनमें किसी अन्य प्रकार की भाव -धारा की प्रधानता नहीं मिलती है । अतः प्रशस्ति के जिन रूपों को खींच तान कर इस काव्य - धारा से निकाला जा सकता है, वे सब की सब ईश्वरीयता मूलक ही ठहरेंगी । स्वयं गोरखनाथ ने भी ईश्वर नाम के जाप की महिमा मूलक व्यंजना की है जो 'महिमा गान' के रूप में प्रशस्ति का एक उत्तम उदाहरण है -

---

1- नाथ - सिद्धों की बानियां : पृष्ठ - 49

'अवधू जाप जपो जप मालो चीन्हो,
जाप जप्यां फल होई ।
अगम जाप जापीला गोरख,
चीन्हत विरला कोई ॥'[1]

सिध्द - नाथ वाणी में गुरु मलंग की भी शायद बड़ी प्रतिष्ठा रही है । यही कारण है कि बाल गुंदाई जी की सबदी में मलंग जी की महिमा का गान किया गया है । बिहारी ने भी इन मलंग ऋषि का उपयोग और उल्लेख किया है । यहां मलंग की महिमा का वर्णन करते हुए कहा जा रहा है कि –

'जाइ माता होलवंती ।
पिता अल्त न भाषते ।
ताइ पुत्र भये जोगेश्वर ।
पुनरपि जन्म न विंद ते ॥ । ॥
चहुं दिसि जोगी रहा मलंग ।
खिल्ले हर कामिनि के संग ।
हंसे खेले राखे भाव ।
राखे काया गढ़ का राव ॥'[2]

इसी क्रम में भरथरी (भर्तृहरि) जी का वह पद भी उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने हरि की व्यापकता का वर्णन करते हुए 'महामहिम' भाव की धारा से ईश्वर का स्मरण किया है –

'सिधौं यहां कोई दूजा नहीं ।
ग्यांन दिष्टि करि देखण लागा ।।
हरि है सब घट मांही ।
जल थल माहीं जीव जंत है
इन पर दया विचारो
सब घट व्यापक एक ब्रह्म है
काहू कूं जिन मारो ॥'[3]

1- गोरखबानी / पृष्ठ - 101
2- नाथ - सिद्धों की बानियां : पृष्ठ - 93
3- वही : पृष्ठ - 112

मूलतः यह बात ब्रह्म की व्यापकता दिखा कर जीव-दया के लिए दिया गया उपदेश मात्र है किन्तु अलौकिक सत्ता की महत्ता की प्रतिष्ठा पर बल देने के कारण इसमें महिमा-मूलक प्रशस्ति की ही भावना का स्वर प्रधान रूप से मुखर दिखायी पड़ता है ।

जहाँ तक नाथ साहित्य की भाव - सम्पदा में प्रशस्ति की धारा देखने का प्रश्न है, यह पहले सोच लिया गया है कि यह साहित्य अपभ्रंश की उस परम्परा को ही स्वीकार करता है जो जैन मुनियों के मुक्तक काव्यों एवं सिद्धों के चर्या पदों में दिखाई पड़ती है । अपभ्रंश साहित्य में धर्म के बाह्य आडम्बरों की निन्दा की गयी है, शास्त्र ज्ञान को व्यर्थ बताया गया है, आत्म - ज्ञान पर जोर दिया गया है तथा शरीर को परमात्मा का मन्दिर बतलाया गया है । नाथ साहित्य में सहज जीवन, आन्तरिक शुचिता और पवित्रता पर जोर दिया गया है ।[1] यही कारण है कि इसमें प्रशस्ति जैसे उस भाव की व्यंजना के लिए गुंजाइश ही कम रही जो अधिकतर लौकिकता एवं भौतिकता से लगाव रखता है । सिद्ध सरहपा आदि-कालीन हिन्दी काव्य - धारा के ऐसे कवि हैं जिन्होंने आध्यात्मिक स्तर पर नयी दिशा के द्वार खोले हैं, उन्हें द्वितीय बौद्ध कवि की संज्ञाएँ दी जा सकती हैं ।[2] सरहपा आदि सिद्धों की इस परम्परा को आगे चल कर गोरखनाथ सिद्ध ने अधिक विकसित रूप सामने रखा जो 'नाथ सम्प्रदाय' का साम्प्रदायिक आधार बना । गोरख-नाथ ने लगभग 40 रचनाएँ लिखी हैं जिनमें अध्यात्म एवं दर्शन की पुष्टि करने वाली गुरु एवं ईश्वर की महिमाओं का बखान किया गया है ।

गुरु की महिमा को प्रतिष्ठित करते हुए गोरखनाथ जी अपने गुरु की आरती गाते हैं । इस आरती - गीत में गुरु की असंख्य महिमाओं का वर्णन किया गया है । वन्दना, प्रणति, समाराधना आदि की भावना से भूषित गोरख का यह आरती - गीत वस्तुतः गुरु - महिमा के ही प्रमुख रूप को प्रतिलक्षित करता है । वे कहते हैं –

1- राजकिशोर पाण्डेय : हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक युग : पृष्ठ - 126
2- देवेन्द्र कुमार जैन : अपभ्रंश काव्य-धारा : पृष्ठ - 15

'नाथ निरंजन आरती साजे ।
गुर के सबद् झलरि बाजे ॥
अनहद नाद गगन मे गरजे । परम जोति तहाँ आप विराजे ॥
दीपक जोति अखंडत बाली । परम जोति जागै दिन राती ॥
सकल भवन उजियारा होई । देव निरंजन और न कोई ॥
अनत कला जाके पार न पावे । संष, मृदंग धुनि बेन बजावे ॥
स्वाति बूंद ले कलस बदाउं । निरति - सुरति ले पुहुप चढाऊं ॥
निजतत नांव अमूरति मूरति । सब देवां सिरि उदबुदि सूरति ॥
आदिनाथ नाती मछेन्द्रनाथ पूता । आरति करे गोरख अवधूता ॥'[1]

अर्थात् यदि दयालु गुरु की आज्ञा पाऊं तो मैं परब्रह्म निरंजन नाथ की आरती गाऊं । जहाँ अनन्त सिद्ध ईश्वर - प्राणिधान में लगे रहते हैं, वहाँ यम की छाया भी निकट नहीं आती । जहाँ योगीश्वर ध्यान में मग्न रहते हैं वहाँ चन्द्रमा और सूर्य भी शीश नवाते हैं अर्थात् वे दोनों भी ईश्वर के वश में हैं और अन्ततः दोनों चन्द्र और सूर्य नाड़ी तथा अमृत स्रावक चन्द्र और मूलाधारस्थ अमृत शोषक सूर्य दोनों योगी के वश में हो जाते हैं । मत्स्येन्द्र के प्रसाद से गोरखनाथ आरती गाता है । उसे परब्रह्म का झिलमिल प्रकाश दिखाई देता है । उस अवस्था में वह एक रस स्थित है, अर्थात् नहीं आता - जाता ।'

गोरखनाथ की 'प्राण संकली' एक प्रमुख नाथ पंथी रचना है । इस रचना में 'गुरुवन्दन' के रूप में भी गुरु - महिमा का गान किया गया है । इसे प्रशस्ति काव्य की परम्परा में एक स्वस्थ स्थल के रूप में देखा जा सकता है :-

'प्रथमे प्रणउं गुर के पाया । जिन मोहिं आतम ब्रह्म लखाया ॥
सतगुर सबद कह्याते बूझ्या । तृहूं लोक दीपक मनि सूझ्या ॥
पाप पुंन करम का नासा । मोष मुक्ति चेतउ हरि पासा ॥
जोग जुक्त जब पाओ ग्याना । काया पोषे पद निर्बाना ॥'[2]

1- गोरखबानी : पृष्ठ - 158 : छन्द संख्या - 62
2- गोरखनाथ : प्राण संकली : छन्द संख्या - 1, तथा 2

'गोरख-बोध' गोरखनाथ की दूसरी ऐसी रचना है जो प्रशस्ति के सूत्रों से सन्निविष्ट मानी जा सकती है । अपने गुरु की महत्ता का अनुभव और उसका अनुधावन करते हुए गोरखनाथ जी लिखते हैं —

'स्वामी तुम्हे गुर गोसाईं । अम्हे जासिष सब्द एक पूछिबा । दया करि कहिबा मन न करिबा रोष ।'[1]

स्पष्ट है कि सत्यनारायण व्रत कथा के महात्म्य की शैली पर निर्मित यह बोध ग्रन्थ नाथ पंथियों की साधना-धारा में गुरु महात्म्य का ही प्रतिपादक है ।

<u>चर्यागीतों में प्रशस्ति के बीज</u> :-

सिद्ध नाथ साहित्य में चर्या गीतों का अपना विशिष्ट महत्व है । इन गीतों में दार्शनिक विचारों और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की ही चर्चा का प्रधान स्वर पाया जाता है । दार्शनिक विवेचन कहीं-कहीं प्रासंगिक रूप से ही किया गया है किन्तु साधनात्मक पक्ष के वर्णन को ही प्रधानता दे दी गयी है ।[2] चर्या गीतों में सहजानन्द की मस्ती का वर्णन है । कहा गया है कि — 'कान्ह अब किसी मदोन्मत्त हाथी के समान मस्त हो गया है और 'नलिनी' वन जैसे 'सहज' के प्रदेश में प्रवेश करके अब इसने निर्विकल्प की पूरी शक्ति प्राप्त कर ली है —

'कान्ह विलास मय आसव माता ।
सहज नलिनी वन पइस निविता ॥'[3]

अपनी साधना के महत्ता का निरूपण भी प्रशस्ति भाव के ही एक रूप की अभिव्यंजना है । अपनी मस्ती में भुसुक कहता है — 'अरे भुसुक देख यहाँ पर गगन में किसी ऐसे अद्भुत 'सहज स्वभाव' का उदय हो गया है जिसका बोध होते ही सारा इन्द्रिय जाल (इन्द्र जाल) नष्ट हो जाता है और अपने मन के भीतर पूर्ण उल्लास आ जाता है जैसे विषय की विशुद्धि हो जाने पर गगन में चन्द्रमा की ज्योति छिटक जाती है —

1- गोरख बोध ; हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हस्त लिखित प्रति ।
2- पं० परशुराम चतुर्वेदी : बौद्ध - सिद्धों के चर्या गीत : पृष्ठ - 58
3- वही : पृष्ठ - 67 : चर्या सं० 9

'उइए गअण माझे अद्भुआ ।
ये घरे भुइक सहज सत्ता ॥
जाइ हुणन्ते तुटइ इन्द्र आल ।
निहुरेणि अमन दे उलास ॥
विसय विशुध्दि मन भुज्जिअ अनन्दे ।
गअणन्ह जिस उजोति चन्दे ॥'[1]

चर्या गीतों में चित्त की निर्मलता, विचार की शुध्दता पर आधारित महत्व के गान हैं । साथ - साथ साधना - विषयक महिमा अथवा साधन रूप में प्रयोग वस्तुओं; पदार्थों एवं प्राणियों का भी यशगान किया गया है । गुण्डरीपा ने साधना मूलक भाव से प्रशस्ति का स्वर संधान करते हुए लिखा है -

'तियड्डा चाँपि जोगिनि दे अंकवारी ।
कमल - कुलिश घाँटि करहुँ बिआली ॥
जोगिनि तोहि बिनु खनहुँ न जीवौं ।
तव मुख चुम्बि कमल रस पीवौं ॥
के कहुँ जोगिनि लेप न जाय ।
मणि - कुंडल बहि उड्डानें समाय ॥
सासु घरे घालो कुंजी ताल ।
चाँद - सूर्य दोउ पाखहिं ताल ॥
भने गुंडरी में कुन्द रे वीरा ।
नर - नारी मांझ दोनेउं चीरा ॥'[2]

साधना की सिध्दि के विचार से सिध्दों द्वारा साधन रूप में अपनाई गयी योगिनियों - उत्तम योगिनियों की प्रशंसा का यह राग - रंजित गान निश्चित रूप से साधनारत सिध्दों के मन के प्रशस्ति का भाव उद्घाटित करता है । प्रशस्ति मानव-मात्र का एक भाव - बोध है जो कहीं - न - कहीं किसी-न-किसी स्तर पर

1- प० परशुराम चतुर्वेदी : बौध्द सिध्दों के चर्या गीत : पृष्ठ-67: चर्या सं० 30
2- हिन्दी काव्य धारा : पृष्ठ - 143

अवतरित होना चाहता है । गुण्डरीपा एक सिद्ध थे, उनकी सिद्धवाणी में प्रशस्ति का यही रूप संभावित भी था ।

इन उदाहरणों के प्रतिपादन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि सिद्ध - नाथों की वाणी में अलौकिक प्रशस्ति का जो रूप पाया जाता है वह मूलतः वन्दना एवं महिमा गान प्रधान है । प्रशस्ति के अन्य रूपों का इस धारा की कविता में कोई भी स्वर दिखाई नहीं पड़ता है । साधनात्मक काव्य में जैन कवियों की रचनाओं के बीच प्रशस्ति के जितने रूप एवं जिस पूर्णता के साथ मिलते है उनका सिद्ध - नाथों की वाणियों में पूर्णतया अभाव है । इसका कारण यह है कि सिद्ध - नाथ कवि प्रायः समाज एवं शास्त्र विरोधी सहज साधना करने वाले ऐसे सन्त थे जिन्हें लौकिक लगाव की तनिक परवाह नहीं थी । इसीलिए उनके स्वर सदा 'ओंकार - निराकार' की चर्चा से पूर्ण रहे, संसार के सम्बन्धों, सुखों तथा वस्तुओं के प्रति उनमें तनिक भी सहानुभूति नहीं थी । खण्डन - मण्डन की प्रवृत्ति तो जैनियों में भी थी पर सिद्ध कवि सरह एवं कण्ह आदि अत्यन्त उग्र थे । उन्होंने बड़े ही लट्ठमार ढंग से अपनी बातें कही हैं ।[1]

सिद्ध - नाथों की काव्य साधना में प्रशस्ति के अभाव का एक मूल कारण यह था कि वे तत्कालीन जीवन, नानाविध स्थितियों एवं आयामों का पूर्ण एवं सुविधा प्राप्त नहीं कर सके थे । यही कारण है कि उनमें जीवन के व्यापक स्तर पर प्रशस्ति गान का ढंग - ढर्रा नहीं देखा जाता । यदि किसी प्रकार का स्वर है तो वह मात्र अलौकिक, लौकिक कदापि नहीं । इसका एक उचित आधार और कारण है ।

सिद्ध - नाथों में अनेक योगियों की जाति और देश का पता नहीं था । जिनका पता है उनमें से अधिकांश क्षत्रिय एवं ब्राह्मण थे तथा उत्तरी भारत के पूर्वी भाग तथा पश्चिमी प्रदेशों के थे । मत्स्येन्द्र को मछुआ और चर्पट को चारण पुत्र, कणेरीपा को जुलाहा भी कभी - कभी कहा जाता है । x x x x यह परिचय अधिकांशतः अनुमित ही है, ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्ट नहीं । इन सभी नाथपंथियों की जाति, देश और काल विवादास्पद है ।[2] ऐसी स्थिति में समृद्ध जीवन की विभिन्न

1- डा0 नामवर सिंह : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : पृष्ठ - 227
2- डा0 नगेन्द्र नाथ उपाध्याय : गोरखनाथ : पृष्ठ - 52

भाव - छवियों, रूप, सम्पदा, वैभव, ऐश्वर्य, वीरता, युद्ध आदि से जो अधिक सम्बद्ध होने वाली प्रशस्ति भावना का बहुरंगी चित्र सिद्ध - नाथों की वाणी में न तो अनिवार्य ही था, न उसके लिए अपेक्षा ही की जानी चाहिए ।

यह भी उल्लेखनीय है कि नाथ पंथी साधकों के 'सिद्धान्त और साधना' के अध्ययन के अन्तर्गत साहित्य - सौन्दर्य के लिए कोई स्थान नहीं था । उनकी रचनाओं का आधार धर्म एवं योग मिश्रित दार्शनिकता थी । उनका सृजन सहृदय के लिए न था । यही स्थिति उनकी पूर्ववर्ती और उद्भावक सिद्धों की रचनाओं का था । कुल मिलाकर सिद्ध - नाथ साहित्य का लक्ष्य जीवन के वैविध्य एवं समग्रता की साहित्यिक तल पर देखने का नहीं था । उल्टे इन उभय साधनाओं में हल निर्गुण सन्तों की वाणी सामाजिक रूढ़ि, साहित्यिक जड़िमा और वैयक्तिक अहंता पर कठोराघात कर रही थी । यह भी विचारणीय है कि 'सिद्ध - साहित्य में ब्राह्मण, वेद, होम, प्रतीमापासना, तीर्थ - स्नान, बाह्याचार का निषेध एवं विरोध है जिसमें सन्तों की विचार धारा का पूर्ण रूप देखा गया है । इस साधना - पद्धति पर शाक्त - तन्त्रों का व्यापक प्रभाव दीख पड़ता है । 'पंचमकार' की जो स्थिति 'कौल ज्ञान' एवं तन्त्र के ग्रन्थों में है, कुछ वैसी स्थिति यहाँ भी है ।'[1] जिस परिवेश एवं प्रवृत्ति में प्रशस्ति की भावनाएँ पनपती हैं उस सामन्तीय परम्परा के ये कतई हिमायती ही नहीं थे । ऐसी स्थिति में सिद्ध - नाथों की वाणियों में प्रशस्ति का वह विशिष्ट स्वर बिल्कुल नहीं था जो मात्र लौकिक नरेशों के यशगान एवं विरुदावली से प्रस्फुटित होता है । यदि हमने लौकिक और अलौकिक दोनों भेदों की परिकल्पना न कर ली होती तो सिद्ध - नाथ साहित्य कोरस दृष्टि से महत्ता कुछ भी न होती । किन्तु प्रशस्ति की व्यापक पृष्ठभूमि मान कर चलने से इस धारा के काव्य में हमें प्रशस्ति का स्वरूप मिलता है परन्तु वह मात्र अलौकिक है । जबकि जैन सन्तों की रचनाओं में प्रशस्ति के वे सम्पूर्ण रूप मिल जाते हैं जिनकी हो सम्भावना चारण काव्य या सामन्तीय काव्य में की जाती है, जिस पर अगले अध्याय में विचार किया जायेगा ।

जब सिद्ध - नाथ कवि राज्याश्रय में नहीं रहे, तब वीरता मूलक प्रशस्ति उनकी रचनाओं में कहाँ से आ जाती । इन कवियों ने जब लोक सम्पदा,

---

1- डा० रामखेलावन पाण्डेय : हिन्दी साहित्य का नया इतिहास : पृष्ठ-64

नारी-सुख, ऐन्द्रिक सौन्दर्य उपासना को तिलांजलि दे दे रखी थी तो उनका मन उधर रमता ही कैसे ? अतः सिद्ध - नाथ कवियों की वाणी में स्वात्मक प्रशस्ति के भाव का अभाव परम स्वाभाविक है । जिन्हें सम्पदा, वैभव एवं ऐश्वर्य के प्रति कोई लगाव ही न रहा हो, उस योगी यती की कविता में सम्पदा एवं वैभव की गाथा गाने के लिए गुंजाइश हो भी नहीं सकती । कहने का तात्पर्य यह कि लोक से पराङ्मुख परलोक की चिन्ता करने वाले, नीति एवं आचार की संहिता बनाने वाले सिद्ध-नाथ कवि वाह्य संघर्ष, रूपोपासना, वैभव - लोभ से जुड़ी हुई महिमाओं का गान क्यों करते ? यह सम्भव हो न था और यही हुआ भी । इसलिए सिद्ध - नाथ काव्य उनके आराध्य ईश्वर या ईश्वर धर्मी अन्य शक्ति तथा उनके साधना पंथी गुरु ही सब कुछ थे । अतः उनकी वन्दना, उनकी आराधना एवं उनके यश, चमत्कार के ही गीत उन्होंने गाये । इसी को हम प्रशस्ति के रूप में ग्रहण कर सकते हैं । इस अध्याय में अध्ययन की यही दृष्टि भी रही और इस दृष्टि से वन्दना या 'आराधना मूलक प्रशस्ति के साथ ही साथ सिद्ध - नाथ कवियों की वाणी में महिमागान की भी प्रवृत्ति पायी जाती है जब कि जैन कवियों में प्रशस्ति के प्रायः सभी रूपों का चित्रण हुआ है ।

रासमन्तीय काव्य में भी प्रशस्ति का बहुरंगी रूप मिलना चाहिए क्योंकि वह काव्य लोक - जीवन का जीवन्त चित्र है और उन राजपूतों की एक सशक्त हिन्दू आस्था भी थी । अतः उनमें बहुदेवतावाद जनित अलौकिक आस्थाएं भी फूलती -फलती रहीं । फलतः लौकिक - अलौकिक दोनों प्रकार की प्रशस्ति भावना वहां अपेक्षित है । अगले अध्याय में इस सन्दर्भ पर विधिवत् विचार किया जायगा ।

******** O ********